सत्संग पत्रक

Friday 4th January 1957

अपने आनन्द स्वरूपके विवेकसे अन्य अनात्मा दुःखसे वैराग्य होता है। अपने प्रकाशक चेतनरूपके विवेकसे अन्य अनात्मा जड है इसलिये उसके साक्षी रूपमें उससे अलगाव का ज्ञान होता है। अपने सत्स्वरूपके विवेकसे अन्य दुःख और जड असत् है ऐसा ज्ञान होता है।

जो अपने प्रिय आनन्द आत्मासे भिन्न है वह दुःख जड और असत् है। जो दुःख है सो जड है, जो जड है सो असत् है। जो असत् है सो सत्में अध्यस्त है, जो अध्यस्त है सो ज्ञानमें अध्यस्त है, जो ज्ञात है सो ज्ञात है, जो ज्ञात है वह अपने सत् से भिन्न नहीं है। अधिष्ठान ज्ञान से

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Saturday 5th January 1957

विवेक

१ - दृश्यवस्तु, ज्ञेय, विषय, कार्य, भोग्य आदि = इदम्
२ - द्रष्टा, ज्ञाता, विषयी, कर्त्ता, भोक्ता आदि = अहम्

×

१ — अनित्य, परिवर्तनशील, अनेक, परतन्त्र, अप्रिय
२ - नित्य, अपरिवर्तनीय, एक, स्वतन्त्र, प्रिय

×

१ — विकारी, दृश्य, सापेक्ष, परप्रकाश्य,
२ — निर्विकार, द्रष्टा, निरपेक्ष, स्वयंप्रकाश, (सर्वावभासक

×

१ — मिथ्या, अध्यस्त, ज्ञाननिवर्त्य, असत्।
२ - सत्य, अधिष्ठान, ज्ञानस्वरूप, सत्, आनन्द।

केवल अद्वितीय आत्मा

भ्रान्ति के रूप

१ - ब्रह्म एक ऐसा देश है, जिसमें दृश्य नहीं
२ - ब्रह्म एक ऐसा काल है जिसमें नामरूप नहीं
३ - ब्रह्म एक ऐसा पदार्थ है जिसमें कार्यकारण नहीं

(उसकी उम्र बड़ी है, विस्तार, दूरी या अलखडू है, कार्य कारणादि भेद से शून्य है — यह सब भ्रान्ति के ही रूप हैं)

यदि हम प्रतीति रहित वस्तु की कल्पना करते हैं तो वह परोक्ष ही है। प्रतीति का अभाव अनुभव नहीं है। यदि अभी, यहीं और यही अनुभव नहीं है तो वह परिच्छिन्न, परोक्ष, अन्य तथा कल्पित है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Sunday 6th January 1957

आवरण लक्ष्यपर नहीं है। अपना आत्मा ही अविचारित-अज्ञात होकर आवृत सा प्रतीत हो रहा है। अज्ञात रूपसे आत्मा ही अन्य सा, अप्राप्त सा भासता है। न केवल लक्ष्य स्वतः प्राप्त है, वस्तुतः साधन भी स्वतः प्राप्त ही है। अनन्तता अपना स्वयंसिद्ध स्वरूप है तो ज्ञान क्या अपना स्वयंसिद्ध स्वरूप नहीं है। अनित्यता हमें छू नहीं सकती — हम विविक्त हैं। अद्वितीय असङ्ग में राग कहाँ? हम विरक्त हैं। मन, इन्द्रिय, कर्म, शरीर, अभिमान, मनोराज्य — इनका विषय या आश्रय आत्मा नहीं है फिर षट् सम्पत्तिकी न्यूनता अपने स्वरूपमें कहाँ? बन्धन किसका किसको और क्या?

निश्चय, निर्णय एवं स्थिति को श्रवण, मनन और निदिध्यासन कहते हैं। पिछले दो पहलेकी अदृढ़ता या प्रतिबन्धको मिटाते हैं। निश्चय अन्य विषयक हो तो प्रवर्तक निवर्तक होता है। स्व विषयक निश्चय साध्यका नहीं, सिद्धका होता है। सिद्ध वस्तुका अनिश्चयसे कुछ बिगड़ता नहीं निश्चयसे बनता नहीं। वह तो ज्योंका त्यों रहता है। केवल सत् हो तो। चित् तो निश्चय-अनिश्चयका प्रकाशक है। उसे उसकी आवश्यकता नहीं। आनन्द हो और स्व हो तो निश्चय का कोई प्रयोजन ही न रहा। क्या अपना होना, जानना और प्रियता अपरोक्ष निश्चित नहीं है?

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Monday 7th January 1957

द्रष्टा और दृश्य की सन्धि क्या है?
सन्धि हो तो दोनों की पृथकता सिद्ध हो सकती है।
परन्तु वह स्वयं दृश्य है या नहीं? दृश्य है तो
उसकी और द्रष्टा की सन्धि क्या? दृश्य नहीं है
तो वह द्रष्टा से भिन्न नहीं है। दृश्य से विलक्षण,
सिद्ध होने पर भी द्रष्टा अपने से भिन्न जो कुछ
देखता है वह वस्तुतः उसका स्वरूप ही है। भिन्नता अज्ञान
सिद्ध है। भ्रान्ति ज्ञान ही दोनों की पृथकता का कारण
सन्धि है।

यह अज्ञान कहाँ से आया?
क्या उसका आना ही जरूरी है! यह दृष्टा
कहाँ से आ टपका? द्रष्टा का स्वरूप है
दृङ्मात्र, स्वभाव है दृष्टि। द्रष्टा देखता है।
किसको? कौन है दूसरा? क्या उसने आपको
स्वयं द्रष्टा स्वयं दृश्य। तब तो भिन्नता
भ्रान्ति है। अच्छा क्या द्रष्टा दृश्य भी होता है?
नहीं। तब दृश्य क्या है? प्रतीत होनेपर भी
द्रष्टा का स्वरूप ही है। अद्वितीय द्रष्टा का
देखना, अपने को पूर्ण और यथार्थ न देख
पाना यही तो भ्रान्तिदर्शन है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Wednesday 9th January 1957

तत्त्वविचार की कुछ विशिष्ट दृष्टियाँ हैं —

१- कार्यकारण परम्परा के विचार से जगत् का मूल सत् है।

२- कर्मफल परम्परा के विचार से पूर्व सुख के संस्कार, इच्छा, प्रयत्न, सुखफल पुनः संस्कार = सुख।

३- दृश्य-द्रष्टा के विचार से सर्वावभासक स्वयम्प्रकाश चित्।

यह तीनो मत शून्यवाद के विरोधी हैं; पहला विशेषरूप से। दूसरा मुख्य रूप से अन्य कारण वाद का विरोधी है और तीसरा जड़कारण वाद का।

द्रष्टा से दृश्य की उत्पत्ति मानने पर चेतन से जगत् की उत्पत्ति = जड़ की उत्पत्ति माननी पड़ेगी। द्रष्टा दृश्य का प्रकाशक तो है परन्तु उत्पत्ति नहीं। ज्ञान यथास्थित वस्तु को दिखाता मात्र है दृष्टि के बिना दृश्य की सिद्धि ही नहीं है। सब दृश्य दृश्यत्वेन एक हैं वह दृष्टि से भिन्न नहीं। और बीच में दृष्टि ही पराग्रूप से दृश्य और प्रत्यग्रूप से द्रष्टा के रूप में भासती है। प्रत्यक् और पराक् का भेद दैहिक = कल्पित है। निष्कर्ष —

४- द्रष्टा का कोई कार्य (पुत्र पौत्रादि) नहीं है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Thursday 10th January 1957

जड वस्तु किसी देशमें किसी कालमें और किसी
आकारमें रहती है। कालमें आकार बदलते हैं। भिन्न-भिन्न
देशमें अवयव रहते हैं। भिन्न-भिन्न दैशिक अवयवों एवं
विभिन्न कालिक आकारोंमें अन्वयरूपसे अनुगत एकत्वको
धारण करनेवाला जड-द्रव्य है - ऐसी प्रतीति होती है।

कहनेका अभिप्राय यह कि किसी भी द्रव्यमें
स्वगत भेद तब होगा जब वह अपने आकार बदले, अवयव
वाली हो या दोनोंका आश्रय हो। परन्तु ऐसा तो केवल
जडमें ही सम्भव है क्योंकि आकार अवयव आश्रय
तीनो ही दृश्य होते हैं। जो इनका द्रष्टा है, प्रकाशक
है, संविन्मात्र है उसमें स्वगत भेदकी कल्पना
असम्भव है। भेदका द्रष्टा भिन्न कहाँ, कब किससे
वह तो इनसे अलग, इनका प्रकाशक, इनका अधिष्ठान
इनका वास्तविक स्वरूप है अर्थात् स्वयं भेदके रूपमें
भास रहा है। निष्कर्ष—

द्रष्टा स्वगत भेद शून्य है। अर्थात् उसमें
आकार, अवयव, परिवर्तन, आन्तर-बाह्य आदि
भेद नहीं है।

अखण्डानन्द सरस्वती

सत्संग पत्रक

Friday 11th January 1957

द्रष्टा दृश्यसे विलक्षण है - यह निश्चय करनेके लिये तीन अवस्था, तीन गुण, तीन शरीर, पञ्चकोष आदिका विवेक किया जाता है

स्थूल शरीर	सूक्ष्म	कारण
जाग्रत	स्वप्न	सुषुप्ति
विश्व-विराट्	तैजस-हिरण्यगर्भ	प्राज्ञ-ईश्वर
सत्त्व	रज	तम
अन्नमयकोष	(प्राण, मन, विज्ञान)	आनन्दमय कोष)

अन्नमय (जैसे उठाया जानेवाला हाथ, पक्षाघात होनेपर लटकनेवाला)

प्राणमय (उठानेकी शक्ति, जो पक्षाघातमें क्षीण हो जाती है।

मनोमय (शक्तिको प्रेरित करनेवाली इच्छा)

विज्ञानमय (अनेक इच्छाओंको व्यवस्थित रूपसे प्रेरित करनेवाला)

आनन्दमय (सम्पूर्ण कल्पनाओंको छोड़कर एक आनन्दाकार के आभास से युक्त अविद्यावृत्ति)

द्रष्टा सबमें एकरस ज्ञानमात्र

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Saturday 12th January 1957

सांख्यमें द्रष्टाके निरूपणकी प्रणाली भिन्न है।
उसके अनुसार पदार्थ चार प्रकारके हैं।

१- कार्य्य - जिनसे फिर किसी दूसरे कार्य्यकी उत्पत्ति नहीं।
२- कार्यकारण = जो अपने कारणकी दृष्टिसे कार्य्य और कार्य की दृष्टिसे कारण।
३- कारण — केवल कारण ही किसीका कार्य नहीं।
४ — न कार्य न कारण (पहले तीनोंसे सर्वथा पृथक् चेतन)

१- पृथिव्यादि। २- महतत्त्वादि।

३- प्रकृति। ४- पुरुष।

प्रकृति ही अनुलोम - प्रतिलोम परिणाम से जगत्का कारण है। वह नित्य और परिणामिनी है। पुरुष असङ्ग द्रष्टा है। प्रकृतिके विलासोंका द्रष्टा होनेसे वह उपलब्धा = भोक्ता भी है और सुखी दुःखी, जन्मादि के भेदसे अलग - अलग भी है। इस सिद्धान्तमें सम्पूर्ण कार्य कारण-सामग्रीसे माना गया है कर्त्ता (व्यष्टि अथवा समष्टि - जीव-ईश्वर) किसीकी आवश्यकता नहीं है। द्रष्टा - दृश्य दो ही विभाग होनेके कारण ईश्वरके लिये कोई अवकाश नहीं है। जो लोग सांख्यको सेश्वर कहते हैं वे योगको ही कहते हैं या सांख्य का सिद्धान्त नहीं समझते।

सांख्यकी रीतिसे दृश्य जगत् दो प्रकारका है एक अविद्या का परिवार — आविद्यक अस्मिता, राग द्वेष आदि दूसरा प्राकृतिक पृथिव्यादि। इनमेंसे पहला प्रातीतिक और दूसरा वास्तविक।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Monday 14th January 1957

यह भी विचारणीय है कि बुद्धि और द्रष्टाकी सन्धिमें स्थित प्रकृति जो कि स्वयं दृश्य नहीं, दृश्यके कारण रूपसे कल्पित है, देशकालवस्तुकी वृत्तिसे रहित है, अपनेको द्रष्टासे भिन्न कैसे दिखाती है? दीखती है तो दृश्य क्यों नहीं। नहीं दीखती तो उसके होनेमें क्या प्रमाण? द्रष्टाकी अनुभूतिमें प्रकृति है क्या?

१. 'यह प्रकृति है' — ऐसी वृत्ति द्रष्टामें नहीं है। निर्वृत्ति सविषयक होती नहीं है।

२. द्रष्टाकी दृष्टि सविषयक नहीं है।

३. द्रष्टा आन्तर और प्रकृति बाह्य नहीं है क्योंकि महान्के बिना देशकी और देशके बिना बाह्य-आन्तरके भेदकी वृत्ति नहीं।

४. द्रष्टा और प्रकृतिमें परस्पर पूर्वापर या कार्य-कारणभाव भी नहीं है।

५. जड़ चेतनका विभाग करनेवाली कोई रेखा भी नहीं है।

६. ईश्वर कर्म आदि कोई अन्य निमित्त भी नहीं है।

७. यदि प्रकृति है तो उसकी अप्रतीतिका कोई कारण भी नहीं है।

८. यदि वे दो हैं तो दोनोंके आधार रूपसे तृतीय वस्तु होनी चाहिये और प्रकाशक भी चाहिये सो अप्रसिद्ध है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Tueeday 15th January 1957

सांख्यमत में अविवेक की निवृत्ति होनेपर भी प्राकृत सृष्टि ज्योंकी-त्यों बनी रहती है और पञ्चभूत में कल्पित शरीरकी आकृति भी पूर्ववत् ही रहती है। इन्द्रियां, मन, अहंकार, बुद्धि, आदि में कोई अन्तर नहीं आता। यह सब तो प्राकृत हैं। द्रष्टा पुरुषका दृश्यके साथ संयोग ही अस्मिता है इसीसे रागादि हैं। सो सब अविवेक जन्य होने से उसके निवृत्त होते ही संयोग को प्राप्त नहीं होते हैं, यही जीवन्मुक्ति है।

जीवन्मुक्ति दशा व्यवहारमें वेदान्तकी भी ऐसी ही है। सांख्य इसको प्राकृत मानता है और वेदान्त बाधित होनेसे केवल प्रतीतिमात्र। बाधके लिये महावाक्यजन्य ऐक्यवृत्ति अपेक्षित है।

इस प्रकार सांख्य की प्रक्रिया ऋजुबुद्धि जिज्ञासुओं के लिये बहुत उपयोगी है और प्रौढ विवेक होनेपर वेदान्तज्ञान से एक हो जाते हैं।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Wednesday 16th January 1957

देहसे आत्माका अविवेक अभिनिवेश है।
अन्तःकरणकी सुखदुःखाकारवृत्तिसे अविवेक
रागद्वेष है।
अहंकार से अविवेक — तामस, तैजस एवं
वैकारिक से — अस्मिता है।
बुद्धि — व्यष्टि-समष्टि, जाग्रत-सुषुप्ति, स्थूल-
प्रलय, देश-काल, विषय-निर्विषय, कार्यो-
न्मुख कारणोन्मुख — अनुलोम-प्रतिलोम
क्रमसे — कारण-प्रकृति — से अविवेक
अविद्या है।
वेदान्त में अज्ञान माया की दो शक्ति मानते हैं
आवरणशक्ति एवं विक्षेप शक्ति। सांख्यकी
परिणामिनी प्रकृति विक्षेपशक्ति और
अविवेक = अविद्या आवरण शक्ति। इन दोनों
का भेद कार्य अथवा व्यवहार की दृष्टिसे
ही है। प्रतिलोम परिणामसे प्रलय होने पर
कारण-रूपा प्रकृति और अविवेक में भेद
होना सम्भव नहीं है। वह भेद कार्यभेद
बल-फलबल से कल्पित है।
इसलिये परमार्थ = ऐक्य के ज्ञानसे
अविद्या के साथ ही प्रकृति की पृथक्ता

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Thursday 17th January 1957

प्रकृति सन्मात्रसे भिन्न कुछ नहीं है।

प्रकृति (सुषुप्ति = बेहोशी)

महान (निद्राभङ्ग = होश = मैं कौन हूँ' इस वृत्तिके पूर्व)

अहंकार (मैं यह, यहाँ, अब ऐसा)

पञ्चतन्मात्रा (शब्द स्पर्शादि)

पञ्च भूत (शरीर – द्रव्य आदि)

प्रलय

यही विपरीत क्रमसे कारणमें लीन प्रकृति

पहले प्रकृति थी, बादमें प्रकृति रहेगी।
पहले मिट्टी थी बादमें मिट्टी रहेगी।
जिसमे आकृतियाँ आयीं और गयीं
वह क्या है? प्रकृतिने अपना प्रकृतित्व छोड़
दिया तो फिर वह प्रकृति नहीं हो सकती।
नहीं छोड़ा तो वह थोड़े समयके लिये
भिन्न-भिन्न आकारोंमें हुई और फिर ज्योंकी
त्यों। आकार कालिक हैं और प्रकृति अकाल
जिन्हें विकृति कहते हैं वे केवल आकृति ही
हैं। समूची प्रकृति विकृति हो गयी तो उसका
नाश हो गया। इस विकृतिके क्रमसे दूसरी
नयी प्रकृति उत्पन्न होगी। क्योंकि इसके
बादकी एक दशा मात्र रहेगी उसकी कारण
ता सिद्ध नहीं होगी।

अखण्डानन्द (हस्ताक्षर)

सत्संग पत्रक

Friday 18th January 1957

विकृति हुई बिना देश-कालके महान् की उत्पत्ति से पूर्व अंश कहां से आया ? जिस अंशमें लय उस अंशमें उत्पत्ति ऐसा माननेपर वह व्यवहारदृष्टि से कल्पित ही होगा। क्या प्रकृति का दो रूप है — एक सबीज और दूसरा निर्बीज। बस यही निर्बीज सन्मात्र है और सबीज व्यावहारिक दृष्टिसे कल्पित।

यदि प्रकृतिके दो रूप नहीं हैं तो समूची प्रकृति विकृति बन जाती है और प्रलय कालमें दूसरी प्रकृति उत्पन्न होती है यह मानना पड़ेगा। फिर तो उसकी एकता और नित्यता ही नहीं रहेगी। तने का कार्य बीज और बीज का कार्य तना — इनमें नियत कार्यकारणभाव नहीं है। इन दोनों से विलक्षण परम्परा नामकी भी कोई वस्तु नहीं है।

प्रकृति - अज्ञान
बुद्धि - अन्तःकरण
अहंकार - आभास

वैकारिक तैजस तामस

ज्ञाता (ज्ञानेन्द्रिय) कर्ता (कर्मेन्द्रिय) भोक्ता (मन)

सांख्यमें जिसे प्रकृति कहा गया है वही वेदान्तमें अज्ञानके नामसे कहा गया है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Monday 21st January 1957

'सत्' से रहित 'चित' सापेक्ष है। 'चित' से रहित 'सत'
जड' है। एकसे दूसरे की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।
एक की गोदमें दूसरे की स्थिति सम्भव नहीं।
चेतन-सत में प्रकृति केवल अध्यस्त ही
हो सकती है। वास्तविक नहीं। वस्तु भी नहीं।
चित् सत् से भिन्न होनेपर असत।
सत् चित् से भिन्न होनेपर जड। परन्तु सांख्यमतमें
प्रकृति जड नहीं, जडका कारण है। पुरुष असत
नहीं सत है। अब विचार यह करना है कि
चेतन सत्से अन्य सत में क्या विलक्षणता है?
अचेतन होना ही विलक्षणता है तो वह अचेतन
स्वयं प्रकाश है कि अन्य प्रकाश सापेक्ष। प्रकाश्य
सत प्रकाशसत सापेक्ष एवं उसमें अध्यस्त है।
इस लिये चेतन रहित सत केवल कल्पित है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)

सत्संग पत्रक

Tuesday 22nd January 1957

अनुभव प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। अब प्रश्न यह है कि जिस अनुभव की प्राप्ति की इच्छा है उसके स्वरूप के सम्बन्धमें क्या धारणा है? क्या अनुभव के किसी आकार की कल्पना होती है? यदि हाँ तो वह आकार दृश्य, परोक्ष, अन्य, परिच्छिन्न अवश्य ही होगा। क्या तुम ऐसी ही वस्तु चाहते हो। यदि सम्पूर्ण आकारोंके अभाव — निराकार का अनुभव प्राप्त करना चाहते हो तो वह वर्त्तमान आकार युक्त अनुभव की अपेक्षा विशेष है कि नहीं? फिर भी तो सविशेष ही हुआ न? इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि हम भेदका ही अनुभव चाहते हैं।

यदि हम अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं तो मनःकल्पित आकारों एवं उनके अभाव के आकार को अलग करना पड़ेगा — उनको बाद देना पड़ेगा — बाध करना पड़ेगा उनके भासते रहने पर भी उनके भासक शुद्ध अनुभवके स्वरूप की खोज करनी पड़ेगी।

'अनुभव' शब्द की बनावट पर भी विचार करें। सत्तार्थक धातु 'भू' अनु उपसर्ग लगने पर ज्ञान का वाचक बन जाती है।

अखण्डानन्द (सरस्वती)